International Journal of Applied Research 2017; 3(12): 413-417

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(12): 413-417
www.allresearchjournal.com
Received: 08-10-2017
Accepted: 11-11-2017

डॉ. देवी प्रसाद
व्याख्याता–हिन्दी, सेठ नन्दकिशोर पटवारी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमकाथाना, सीकर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. देवी प्रसाद
व्याख्याता–हिन्दी, सेठ नन्दकिशोर पटवारी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमकाथाना, सीकर, राजस्थान, भारत

ऐसी भक्ति करे रैदासा

डॉ. देवी प्रसाद

सारांश
हिन्दी साहित्य में भक्तिकालीन साहित्य का विशेष महत्त्व है। इस काल को हिन्दी साहित्येतिहास में स्वर्णयुग के नाम से जाना जाता है। इस काल में निर्गुण संतों का अपना महत्त्व है। संत साहित्य में मानवता का उपदेश दिया गया है। रविदास जी ऐसे संत हैं, जो अपनी सीधी–सपाट भाषा में मानव को समतावादी समाज के निर्माण का संदेश देते हैं। रविदास जी बहुत परोपकारी तथा दयालु स्वभाव के थे। दूसरों की सहायता करना उनका स्वभाव था। रविदास जी की मान्यता है कि यदि व्यक्ति के हृदय में भगवान के प्रति सच्ची और सच्चा प्रेम नहीं है, तो मूर्ति पूजा करना, मंदिर जाकर पूजापाठ करना ढकोसला मात्र है। रैदास के वाणी में धर्म के विविध आयाम देखने को मिलते हैं। कबीर, रविदास आदि निर्गुण संतो ने ईश्वर को निर्गुण, निराकार बताकर भक्ति का सरल और सहज मार्ग प्रशस्त किया, जिसमें न हठ योग साधना थी, न हीं धार्मिक क्रिया, कर्मकाण्ड, पूजा–पाठ या व्रत–उपवास का विधान। निर्गुण पंथियों का यह मार्ग शुद्ध भक्ति का मार्ग था, जो नाम भक्ति या प्रेमा व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध हुआ। संत रविदास की भक्ति इसी रूप में है, जिसमें सहज–सरल रूप में परमात्मा का स्मरण किया जाता है और भक्त अपने पूर्ण समर्पण के साथ अपने आराध्य की आराधना करता है।

कूटशब्दः निर्गुण, एकेश्वरवाद, कर्मकाण्ड, पाखण्ड, बाह्यचार, आडम्बर, ऊँच–नीच, भेदभाव, राग–द्वेष, निराकार, हठ योग, समतावादी समाज, आत्मा, विषय–वासना, निष्काम कर्म

प्रस्तावना
मध्यकालीन युग में भक्ति साहित्य का जो स्वरुप परिलक्षित होता है, वह रामानन्द से शुरु हुआ माना गया है। रामानन्द ने उत्तर भारत में भक्ति की धारा प्रवाहित की। रामानन्द की शिष्य परम्परा में अनेक प्रसिद्ध संत हुए, जिन्होंने भक्ति साहित्य के माध्यम से तत्कालीन समाज को एकसूत्र में बांधने का कार्य किया, जिनमें मुख्यतः निगुर्ण संत थे। निगुर्ण संतों में भी किबीर और रैदास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय माना जाता है, वैसे रामानन्द कबीर और रैदास के गुरु थे, इसे लेकर दलित साहित्यकार सहमत नहीं हैं।

प्रेम का महत्त्वः मानव जीवन में प्रेम का महत्त्व सर्वोपरी है। प्रेम के बिना मानव पत्थर तुल्य है। सभी संतों ने प्रेम को विशेष महत्व दिया है। संतों ने सांसारिक बंधनों से मुक्त रहकर परमपिता परमेश्वर के प्रेम में लीन होने का उपदेश दिया है। जब मनुष्य पूर्ण समर्पण के साथ परमात्मा के प्रेम में लीन हो जाता है, तो ऐसी भक्ति प्रेमा भक्ति कहलाती है। ईश्वर से प्रेम होने के पश्चात् अपने–पराये का भाव खत्म हो जाता है। परमात्मा से सच्चा प्रेम होने पर सांसारिक प्रेम फीका लगता है। ईश्वर प्रेम के रंग में रंगकर भक्त परमात्मा का स्वरूप ही हो जाता है। भक्त कवियों और संतो ने कहा है कि भले ही ईश्वर के अनेक भक्त हों, किंतु उसके लिए तो परमात्मा ही अकेले प्रीतम है। अपने प्रीतम के दर्शन के लिए इन भक्तों की आंखें उसी तरह तरसती है, जिस तरह पपीहा स्वाति नक्षत्र की बूंद के लिए तरसता हैः–

> ''एक भरोसो राम को, अरु भरोसो सत्तकार।
> सफल होइहु जीवना, कहि 'रविदास' बिचार।।''[1]

भक्त के लिए अपने आराध्य के अलावा अन्य कोई आश्रय नहीं है। संत रविदास के लिए भी अपने आराध्य ही सबकुछ हैं। उन्होंने परमात्मा को स्वाति नक्षत्र के समान बताते हुए स्पष्ट कहा है कि हे प्रभु यदि मुझसे प्रेम संबंध तोड़ दोगे तो भी मैं आपसे प्रेम संबंध नहीं तोड़ सकता, क्योंकि तुम से प्रेम तोड़कर मैं संसार में फिर किससे प्रेम करूं। संत रविदास को तो केवल प्रभु के चरणों का भरोसा हैः–

''रविदास आस इक राम की, अरु न करहु कोउ आस।
राम छांड़ि अनत रमि हंइ, रहंइ सदा उदास।।''[2]

रविदास के अनुसार परमात्मा के प्रेम से बढ़कर और कोई भक्ति हो ही नहीं सकती। स्वादिष्ट भोजन का दान करने, कथा–वार्ता सुनने या गुफा में रहने से या केवल योग करने अथवा माला पहनने से भक्ति नहीं हो सकती। सच्ची भक्ति के लिए तो भक्त को अहंकार त्यागकर ईश्वर से सच्चा प्रेम करना होगाः–

''हरि सा हीरा छांड़ि कै, करैं आन की आस।
ते नर जमपुर जांहिगे, सत भाखै रविदास।।''[3]

जितने भी संत हुए है, सभी ने हिंसा का विरोध किया है। ये सभी न केवल मानव के प्रति अपितु नीरीह प्राणियों के प्रति भी दयालू हैं। संत रविदास जी ने भी जीव–हत्या का विरोध किया हैः–

''रविदास जीव मत मारहि, इक साहब सभी माहिं।
सभ माहि एकहि आत्मा, दूसर कोउ नाहिं।।''[4]

प्रेम का मतलब केवल अपने आप से प्रेम करना या मानव मात्र से प्यार करना नहीं है। जो मनुष्य सच्चा प्रेमी होगा उसका प्रेम संकीर्ण नहीं होगा। संतों ने प्रेम के उदात्त स्वरूप को ग्रहण किया है। संतों को मानव और ईश्वर से तो प्रेम है ही उन्हें मूक प्राणियों के प्रति भी गहरा प्रेम है। तभी तो संत रैदास ने जीव हत्या करने वालों को नरक का भागीदार मानते हुए लिखा हैः–

''अपना जीव कटाय के, मांस पराया खाय।
रविदास मांस जो खात है, ते नर नरकहि जाय।।''[5]

सामाजिक क्रांति के अग्रदूत संत रविदास ने हिंदू और मुसलमानों में भावात्मक एकता स्थापना, समतावादी समाज की स्थापना का एक भावचित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है और धार्मिक संकीर्णताओं, भेदभावों, मांसाहार, अनैतिकता, छुआछूत तथा वर्ण व्यवस्था, तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शोषण तथा धनलिप्सा के कारण अधर्म, दुराचरण जैसे सामाजिक दुर्गुणों का परिष्कार करने की प्रेरणा दी है। इनका मत है कि ईश्वर को कहीं खोजने की आवश्यकता नहीं है, वह तो घट–घट का वासी है। इन्होंने प्रेम को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए लिखा हैः–

''वन खोजो पिय नाहि मिलै, बन मंह प्रीतम नाहिं।
रविदास पी हिय बस रहयो, मानव प्रेमही माहिं।।''[6]

अहम् प्रेम में सबसे बड़ी बाधा और सब गुणों का नाश करने वाला है। संतों ने अपने उपदेशों के माध्यम से लोगों को अभिमान और अवगुणों को छोड़कर सन्मार्ग पर चलने का संदेश दिया है। कबीर ने भी मैं अर्थात् अहम को ईश्वर प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा मानते हुए लिखा कि ''जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहीं। प्रेम गली अति सांकरी, जा में दाम न समाही।'' संत रविदास जी ने भी अभिमान को छोड़ने का उपदेश देते हुए कहा हैः–

''रविदास सोई साधू भलो, जउ मन अभिमान न होय।
औगुन छाड़िहिं गुन गहहि, सुमिरिहि गोविन्द राय।।''[7]

निगुर्ण संत उच्च कोटी के भक्त थे। उनका मत था कि प्रभु का वास्तविक स्थान मनुष्य के हृदय में है। मनुष्य के हृदय में ही परमात्मा निवास करता है, उन्होंने कहा कि "का मथुरा का द्वारका, का कासी हरिद्वार। 'रैदास' खोजा दिल आपना, तउ मिलिया दिलदार"।। इस बात का सीधा–स्पष्ट संदेश था कि बाह्याचारों और आडम्बरों से नहीं, बल्कि सच्चे हृदय से परमात्मा की भक्ति सेही परमात्मा को पाया जा सकता है। परमात्मा न मन्दिर में है, न मस्जिद मेंः–

''मन्दिर मस्जिद दोउ एक हैं, इन मंह अंतर नाहिं।
रैदास राम रहमान का, झगड़ऊ कोई नाहिं।।''[8]

नाम स्मरण का महत्त्वः सभी संतों ने नाम स्मरण को विशेष महत्त्व दिया है। उनके अनुसार गुरु द्वारा दिया गया नाम वह चिंगारी है, जो समस्त पापों को जला देती है। वैसे सभी भक्त कवि नाम स्मरण को महत्त्व देते हैं परन्तु संतों ने नाम के साथ कर्म पर विशेष बल दिया है। उनके लिए कर्म ही पूजा है। ऐसी मान्यता है कि एक बार कबीर ने अपने पुत्र कमाल को खादी का कपड़ा बेचने बाजार भेजा। बाजार से वापस आने पर कबीर को सारे पैसे दे दिए तो कबीर ने पूछा कि किसी को कुछ दिया या नहीं। कमाल के नहीं कहने पर कबीर ने कहा ''बूड़ा वंश कबीर का, निपज्या पूत कमाल। हरि का सुमिरन छोड़ के, घर ले आया माल।।'' यहाँ समझने वाली बात यह है कि कबीर के अनुसार सच्ची भक्ति जरूरतमन्द और दीन–दुखियों की मदद करना है। इन संतो के अनुसार कोरा नाम लेने से कुछ होने वाला नहीं है। नाम–स्मरण के साथ कर्म का होना जरूरी है। संत रविदास भी कर्म को महत्त्व देते हैं। उन्होंने लिखा हैः–

''जिह्वा भजै हरि नाम नित, हत्थ करहिं नित काम।
'रविदास' भए निहचिंत हम, मम चिंत करैंगे राम।।''[9]

संतों के अनुसार नाम ही वह पारस है, जिसके स्पर्श मात्र से अवगुणों से पूरित व्यक्ति भी सोना बन जाता है। रविदास जी ने नाम को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए लिखा हैः–

''अब कैसे छूटे नाम रट लागी।
प्रभुजी तुम चंदन हम पानी। जाकी अंग अंग बास समानी।।
प्रभुजी तुम घन हम मोरा। जैसे चितवत चंद चकोरा।।
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरे दिन राति।।
प्रभुजी तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहिं मिलत सुहागा।।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भगति करे रैदासा।।''[10]

रविदास जैसे संतों ने नाम को साक्षात अमृत माना है, जो जन्म–जन्म की प्यास बुझा कर जन्म–मरण के बंधनों से मुक्त कर देता है। अतः रविदास ऐसे नाम रूपी महारस को पीने की सलाह देते हैं, जो चढ़ने के बाद कभी नहीं उतरता। उन्होंने लिखा हैः–

''रविदास मदुरा का पीजिए, जो चढ़ै चढ़ै उतराय।
नांव महारस पीजिए जो, चढ़े नाहिं उतराए।।''[11]

ईश्वर को पाने के लिए सच्चे मन से भक्ति करना आवश्यक है। संत रविदास के अनुसार अनेक प्रकार की वेशभूषा धारण करना, माला–तिलक लगाना आदि बाहरी पाखण्ड हैं। इस पाखण्डों से परमात्मा को धोखा नहीं दिया जा सकता। जो लोग इस प्रकार का आचरण करते हैं, वे अपने और परमात्मा के बीच एक दीवार खड़ी कर लेते हैं। ऐसे लोग भ्रम के शिकार होते हैं और औरों को भी भ्रम में डालकर मार्ग से भटकाने का काम करते हैं। रविदास जी ने कहा हैः–

''कपट कियां रीझही नहिं केसौ, जगु करता नहिं कांचा।
कहि रविदास भजौ हरि माधौ, सेवग ह्वै मन सांचा।।''[12]
''माथे तिलक हाथ जप माला, जग ठगने कूं स्वांग बनाया।
मारग छांड़ि कुमारग डहकै, सांची प्रीत बिनु राम न पाया।।''[13]

गुरु का सर्वोपरी स्थानः संत परम्परा में गुरु का महत्त्व सर्वोपरी है। कबीर ने 'बलिहारी गुरु आपने, गोबिन्द दियो बताय'' कहकर गुरु का महत्त्व बतलाया है। संतों का मत है कि गुरु ही शिष्य को अज्ञान से बाहर निकालकर परमात्मा से साक्षात्कार करवा सकता है। उनकी दृष्टि में धरती पर गृरु परमात्मा का ही रूप है, जो शिष्य को सांसारिक माया–बंधनों से दूर करता है। रविदास जी कहते हैंः–

''गुरु ग्यान दीपक दिया, बाती दइ जलाय।
रविदास हरि भगति कारनै, जनम मरन बिलमाय।।''[14]

संतों का मत है कि मानव के अन्तर्मन में गुणों रूपी अनेक हीरे और लाल भेरे पड़े हैं, परन्तु वह माया के कारण इन्हें देख नहीं पाता। सच्चा गृरु शिष्य के इन गुणों को पहचानकर दुर्गुणों से दूर करते हुए सद्मार्ग पर ले जाता है। गुरु परमात्मा की भक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। यह संसार एक विकट सागर है। गुरु इस भवसागर से पार होने का रास्ता बतलाता हैः–

''भौ सागर दूभर अति, सिंधु मूरिख यहु जान।
रविदास गुरु पतवार है, नाम नाव करि जान।।''[15]

सभी संतों ने गुरु को सर्वोपरी स्थान दिया है, परन्तु उल्लेखनीय है कि गुरु को भी गुरु की तरह होना चाहिए। अर्थात् वे गुरु को ज्ञानी और उद्धारकर्ता के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार गुरु ऐसा होना चाहिए, जो शिष्य को भवसागर से पार कर परमात्मा से मिलाए। संत रविदास जी ने लिखा हैः–

''आज दिवस लेऊं बलिहारा।
कथा करैं अरु अरथ विचारैं, आप तरैं औरनि कौ तारैं।
कहे 'रविदास' मिलैं निज दास, जनम जनम के काटैं पास।।''[16]

संतों ने केवल गुरु के लिए ही ज्ञान का मापदण्ड स्थापित नहीं किया, बल्कि वे भक्त या शिष्य के लिए भी कुछ शर्तें लागू करते हैं। संत रविदास जी ने भी साधु के लिए कहा है कि वह भी ज्ञान पिपासु होना चाहिए। साधु/भक्त में सहजता और सरलता होनी चाहिए। वह गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए। साधु वही है, जो सबके कल्याण की बात करे, जो दूसरों की पीड़ा को भी अपनी पीड़ा समझ कर उसे दूर करने का प्रयास करेः–

''रविदास सोई साधू भलो, जउ जानहि पर पीर।
पर पीरा कह पेखि के, रह वे सदा अधीर।।''[17]

संत रविदास कहते हैं कि साधु वही है, जो सुख–दुख, लाभ–हानि को एक समान समझे। जिसमें अहंकार नहीं हो। जो मानवीय गुणों से पूरित होः–

''सुख दुख हानि लाभ कउ, जउ समझहि इक समान।
'रविदास' तिन्हहिं जानिए, जोगी पुरुष सुजान।।''[18]

ईश्वर का स्वरूपः रैदास जी का काव्य बिलकुल सहज, निश्छल और अनुभूति से भरा हुआ काव्य है। उन्होंने अपने मन की जो भी छटपटाहट और पीड़ा थी, उसे ईश्वर के प्रति अपने पूर्ण समर्पण सहित सोंपकर जिस रूप में प्रकट किया, वह एक कविता बन जाती थी। वे अपनी व्यापक अनुभूति से सभी के ह्रदय में एक अमिट छाप छोड़ जाते हैं। संत रैदास चूंकि मूलतः भक्त कवि हैं। वे निर्गुण भक्ति के उपासक संत हैं, किन्तु उन्होंने अपने आराध्य को कभी राम, हरि, माधव के नाम से पुकारा तो कभी गोविन्द, मुकुद और मुरारे आदि के नाम से। अन्य संत कवियों की तरह रैदास भी शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन से प्रभावित हैं। उनके अनुसार परमात्मा, परमब्रह्म एक ही है। उसका कोई आकार नहीं है। वह निरापद, निराकार, निर्गुण है। उनके राम कबीर के 'राम' की तरह दशरथ के पुत्र नहीं हैंः–

''रविदास हमारो राम जी, दशरथ करी सुत नहीं।
राम हमउ माहि रमि रह्यो, विश्वकुटम वह माहीं।।[19]

संत रविदास के ईश्वरीय चिंतन को प्रसिद्ध दलित चिंतक लेकर लिखा है, ''सन्त रैदास के सूत्र वचन बुद्ध के अनीश्वरवादी और अनित्यवादी दर्शन पर आधारित हैं। कबीर की भाँति सन्त रैदास ने भी अपने ईश्वर को व्यक्तिवाची धारणा से मुक्त रखा है। उनका ईश्वर वह नहीं है, जो आकाश में बैठा है और लोगों के लिए स्वर्ग–नरक की व्यवस्था करता है।''[20]

''कृस्न करीम राम हरि राघव, जब लगि एक न पेखा।
वेद कितेब कुरान पुरानन, सहज नहिं एक देखा।
जोई जोई पूजिए सोई सोई कांची सहज भाव सति होइ।
कहि रैदास मैं ताहि को पूजूं, जाकै ठांव नांव नहिं कोइ।''[21]

संत कवियों ने निर्गुण ब्रह्म में आस्था प्रकट करते हुए उसे पुष्प की सुगंध के समान अति सूक्ष्म तथा घट–घट का वासी बतलाया है। इनके ईश्वर का न तो कोई रंग है, न रूप है, न जाति है, न कोई आकार है, न वह जन्म लेता है और न ही वह मर सकता है, वह तो अजर–अमर है, अगोचर है, निराकार है, निर्गुण है, शाश्वत है। संत कवियों ने निर्गुण ब्रह्म में आस्था प्रकट करते हुए उसे पुष्प की सुगंध के समान अति सूक्ष्म तथा घट–घट का वासी बतलाया है। इनके ईश्वर का न तो कोई रंग है, न रूप है, न जाति है, न कोई आकार है, न वह जन्म लेता है और न ही वह मर सकता है, वह तो अजर–अमर है, अगोचर है, निराकार है, निर्गुण है, शाश्वत है।

सर्वधम समभावः संत रविदास जी सर्वधर्म समभाव की बात करके समन्वय पर जोर देते हैं। वे कहते हैं कि कोई धर्म छोटा या बड़ा नहीं होता, सभी का सिर्फ एक ही उद्देश्य है, मानव मात्र का कल्याण तथा परम आनन्द की प्राप्ति। सभी की मंजिल और लक्ष्य एक ही हैः–

''मुसलमान से दोसती, हिन्दुअन से कर प्रीत।
रैदास जोति सब हरि की, सब हैं अपने मीत।।''[22]

निर्गुण संप्रदाय के संतों ने निराकार, अगोचर, अगम, अविगत, वर्णनातीत, शब्दातीत, ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ज्ञान एवं प्रेम को आधार बनाया। जिन कवियों ने ज्ञान को प्रश्रय दिया वे ज्ञानाश्रयी काव्यधारा के और जिन कवियों ने प्रेम को आधार बनाया में प्रेमाश्रयी काव्यधारा के कवि माने जाते हैं। लोक कल्याण, लोकमंगल, मानवता के उच्च आदर्शों की अपने काव्य में प्रतिष्ठा करने वाला सत्यम्, शिवम, सुंदरम के सूत्र को अपने में समाहित करने वाला संपूर्ण भक्ति काव्य हिंदी साहित्य का अनमोल एवं अनुपम रत्न है।

ईश्वर की सर्वव्यापकता पर बल

संतों ने परमात्मा को सर्वव्यापक माना है। संतो के अनुसार परमात्मा सर्वज्ञ और घट–घट का वासी है। आत्मा और परमात्मा दोनों एक ही हैं। संतों के अनुसार परमात्मा सब कहीं है, उसे खोजने के लिए किसी स्थान विशेष पर जाने की आवश्यकता नहीं हैः–

''का मथुरा का द्वारिका, का काशी हरिद्वार।
रविदास खोजा दिल आपना, तउ मिलिया दिलदार।।''[23]

संतों के अनुसार परमात्मा को कहीं भी खेजने की आवश्यकता नहीं है। वह सर्वव्यापक है। कोई उसे मन्दिर में खोजता है, तो कोई मस्जिद में। संत रविदास का मत है कि मथुरा, काशी, हरिद्वार, काबा आदि में जाने से कोई फायदा नहीं है। वह ईश्वर तो मनुष्य के अन्तरतम में निवास करता हैः–

''तुरुक मसीति अल्लह ढ़ंढ़इ, देहरे हिंदु राम गुसाईं।
'रविदास' ढूढ़िया राम रहीम कूं, जंह मसीत देहरा नांहीं।।''[24]

संत रविदास का मत है कि राम तो सर्वव्यापक हैं। उनके रहने का कोई एक नियत स्थान नहीं है। जब वह निर्गुण और निराकार है तो उसे कहीं किस प्रकार खोजा जा सकता है। इसलिए उन्होंने लोगों को समझाते हुए कहा कि ईश्वर को पाने के लिए किन्हीं धार्मिक स्थलों पर जाने की आवश्यकता नहीं है।

कर्म का महत्त्वः संतों ने परमात्मा की भक्ति के लिए गृह–त्याग को जरूरी नहीं माना है। सभी संतों ने कर्म को महत्त्व दिया है। वे 'कर्म ही पूजा है' के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं। रविदास जी कहते हैं कि हमें हमेशा अपने कर्म में लगे रहना चाहिए। कर्म करना हमारा धर्म है, तो फल पाना भी हमारा सौभाग्य है। संत गुरु रविदास ने बिना किसी आदर्शवाद में न पड़ते हुए व्यावहारिक जीवन की वस्तु स्थिति को स्वीकारते हुए अपनी बात कही है। उनकी चेतना में उनकी जातीय–अस्मिता इस प्रकार व्याप्त है कि उसी मानदण्ड से वह अपने जीवन–व्यवहार एवं कार्य–व्यापार की हर गतिविधि का अवलोकन एवं मूल्यांकन करते हैं। उनका आत्मनिवेदन उनकी जातिगत विडम्बनाओं की उपस्थिति के स्वीकार के साथ व्यक्त हुआ है। संत गुरु रविदास का यह वैशिष्ट्य संकेत करता है कि उनकी अभिव्यक्ति में सिर्फ आध्यात्मिक क्षेत्र की मुक्ति का स्वप्न नहीं बल्कि सामाजिक मुक्ति का स्वप्न भी विद्यमान हैः–

''करम बंधन में रमि रहियो, फल की ना तजो आस।
करम मानुष का धरम है, सत भाषै रविदास।।''[25]

सभी संतो ने मन को वश में रखने का उपदेश दिया है। मन को वश में किए बिना परमात्मा की भक्ति नहीं की जा सकती, क्योंकि मन की चंचलता भक्ति में स्थिरता नहीं आने देती। रविदास ने अपनी वाणी में मन की चंचलता का जिक्र करते हुए कहा है कि वह माया के हाथ बिका हुआ है। इसलिए उसका मन सांसारिक बंधनों और विषय वास्तव में फंसा हुआ है। रविदास अपने मन की स्थिति को इन शब्दों में प्रकट करते हैंः–

''देखि मूरिखता या मन की।
राम नांम कूं छांड़ि अधारौ, गहि ओट छुद त्रिन की।
अभि अंतर रामु नहिं जान्यौ, छानहु धूरि बन बन की।
जा दिन इह हंसा उरि जइ, है छोरि ठठरिया तन की।
धनु दारा मंह रहहु लपटानो, आपहु नहिं संधि वा छन की।
जन रविदास तियागी जग आसा, लहहु ओट हरि चरनन की।''[26]

यथोक्त के आलोक में कहा जा सकता है कि संत रविदास का भक्ति–दर्शन मानव समाज को नई दिशा देने वाला है। रविदास जी के काव्य का अनुशीलन करने पर हम पाते हैं कि उनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता कर्म का महत्त्व है। उनका उपदेश ''कर्म ही भक्ति है'' मानव समाज को नई दिशा देने का काम करता है। बहुत से लोग जो घर छोडकर संन्यासी बन जाने के बाद कर्म (मेहनत) को छोड़ देते हैं और अपने जीवन–यापन के लिए घर–घर फेरी लगाना प्रारम्भ कर देते हैं। ऐसे लोग दूसरों के दया पर पलते हैं। जीवन–यापन कने के लिए अनेक वस्तुओं और सुविधाओं की आवश्यकता होती है। एम विवेकशील मनुष्य इन आवश्यकताओं के अलए और उदरपूर्ति के लिए दूसरों पर निभर रहे, यह संत रविदास जैसे संतों का गवारा नहीं था। इसलिए ये सभी के लिए कर्म का महत्त्व सिद्ध करते हैं। इनके मतानुसार चाहे कोई संन्यासी हो या सामान्य व्यक्ति, उसे कर्म करना चाहिए। यदि इनसंतों के उपदेश को समझा जाता तो समाज में बहुत बड़ा परिवर्तन हो सकता था।

सत्य तो यह है कि रविदास ने जैसा देखा, उसे अपनी सरल और सहज भाषा में जनता के सामने रख दिया। उनकी भक्ति में किसी तरह का पाखण्ड और बनावटीपन नहीं है। उन्होंने ईश्वर को घट–घट का वासी मानते हुए उपदेश दिया कि ईश्वर की खोज में कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं। किसी मूर्ति या धार्मिक स्थान की आवश्यकता भी नहीं है। देखा जाए तो संतों ने सामान्य जनता के लिए भक्ति के द्वार खोल दिए। ऐसा वर्ग, जिसके लिए पूजा स्थल बंद थे, उनके लिए निर्गुण ईश्वर की भक्ति का मार्ग प्रशस्त कर इन संत कवियों ने जनसामान्य में नव आशा और विश्वास का संचार किया। संत रविदास ने मानव को जाति, धर्म, उच्च, निम्न जैसे सभी भेदभावों को दूर कर मानवता का संदेश दिया है, जो हम सबके लिए अनुकरणीय है। संत रविदास की वाणी में तत्कालीन समाज में व्याप्त धार्मिक पाखण्डों का विरोध होना स्वाभाविक भी था। क्योंकि वे स्वयं शूद्र जाति से थे, जिसके कारण उन्हें अस्पृश्यता एवं छुआछूत का दंश बखूबी झेलना पड़ा। संत रविदास का मानना है कि इस सृष्टि का निर्माणकर्ता तो स्वयं भगवान हैं। इन्होंने ही सबको निर्मित किया है, फिर मानव को, मानव से भेद करने का अधिकार कैसे? अस्पृश्यता एवं छुआछूत के विरोध में उन्होंने अपने पदों के माध्यम से ढेर सारे सवाल खड़े। संत रविदास को अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ा, जो स्वाभाविक भी था। क्योंकि चलती आ रही व्यवस्था को बदलना न तो तब सरल काम था और न अब है।

सन्दर्भ

1. काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास, राधास्वामी सत्संग ब्यास, जिला अमृतसर, पंजाब, दसवां संस्करण, 1998, पृ. सं. 82 पर उद्धृत (दर्शन–102)
2. काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास, राधास्वामी सत्संग ब्यास, जिला अमृतसर, पंजाब, दसवां संस्करण, 1998, पृ. सं. 83 पर उद्धृत (दर्शन–65)
3. काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास, राधास्वामी सत्संग ब्यास, जिला अमृतसर, पंजाब, दसवां संस्करण, 1998, पृ. सं. 83 पर उद्धृत (दर्शन–65)
4. कंवल भारती, संत रैदासः एक विश्लेषण, बोद्धिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उ.प्र., द्वि.सं. 2000, पृ. सं. 164
5. कंवल भारती, संत रैदासः एक विश्लेषण, बोद्धिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उ.प्र., द्वि.सं. 2000, पृ. सं. 165
6. कंवल भारती, संत रैदासः एक विश्लेषण, बोद्धिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उ.प्र., द्वि.सं. 2000, पृ. सं. 164
7. कंवल भारती, संत रैदासः एक विश्लेषण, बोद्धिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उ.प्र., द्वि.सं. 2000, पृ. सं. 151
8. कंवल भारती, संत रैदासः एक विश्लेषण, बोद्धिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उ.प्र., द्वि.सं. 2000, पृ. सं. 149
9. काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास, राधास्वामी सत्संग ब्यास, जिला अमृतसर, पंजाब, दसवां संस्करण, 1998, पृ. सं. 218 पर उद्धृत (दर्शन–117)

10. काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास, राधास्वामी सत्संग ब्यास, जिला अमृतसर, पंजाब, दसवां संस्करण, 1998, पृ. सं. 170 पर उद्धृत (वाणी–166)
11. काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास, राधास्वामी सत्संग ब्यास, जिला अमृतसर, पंजाब, दसवां संस्करण, 1998, पृ. सं. 56 पर उद्धृत (दर्शन–35)
12. काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास, राधास्वामी सत्संग ब्यास, जिला अमृतसर, पंजाब, दसवां संस्करण, 1998, पृ. सं. 56 पर उद्धृत (वाणी–150)
13. काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास, राधास्वामी सत्संग ब्यास, जिला अमृतसर, पंजाब, दसवां संस्करण, 1998, पृ. सं. 56 पर उद्धृत (वाणी–150)
14. काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास, राधास्वामी सत्संग ब्यास, जिला अमृतसर, पंजाब, दसवां संस्करण, 1998, पृ. सं. 132 पर उद्धृत (वाणी / साखी–14)
15. काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास, राधास्वामी सत्संग ब्यास, जिला अमृतसर, पंजाब, दसवां संस्करण, 1998, पृ. सं. 133 पर उद्धृत (वाणी / साखी–19)
16. काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास, राधास्वामी सत्संग ब्यास, जिला अमृतसर, पंजाब, दसवां संस्करण, 1998, पृ. सं. 56 पर उद्धृत (वाणी–150)
17. कंवल भारती, संत रैदासः एक विश्लेषण, बोद्धिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उ.प्र., द्वि.सं. 2000, पृ. सं. 150
18. काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास, राधास्वामी सत्संग ब्यास, जिला अमृतसर, पंजाब, दसवां संस्करण, 1998, पृ. सं. 139 पर उद्धृत (दर्शन–110)
19. गुरु रविदासः वाणी एवं महत्व, सम्पादक–मीरा, पृ. सं. 406
20. कंवल भारती, संत रैदासः एक विश्लेषण, बोद्धिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उ. प्र., द्वि. सं. 2000, पृ. सं. 61
21. कंवल भारती, संत रैदासः एक विश्लेषण, बोद्धिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उ.प्र., द्वि.सं. 2000, पृ. सं. 65
22. कंवल भारती, संत रैदासः एक विश्लेषण, बोद्धिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उ.प्र., द्वि.सं. 2000, पृ. सं. 149
23. कंवल भारती, संत रैदासः एक विश्लेषण, बोद्धिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उ. प्र., द्वि. सं. 2000, पृ. सं. 148
24. काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास, राधास्वामी सत्संग ब्यास, जिला अमृतसर, पंजाब, दसवां संस्करण, 1998, पृ. सं. 113 पर उद्धृत (दर्शन–73)
25. कंवल भारती, संत रैदासः एक विश्लेषण, बोद्धिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उ. प्र., द्वि. सं. 2000, पृ. सं. 165
26. काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास, राधास्वामी सत्संग ब्यास, जिला अमृतसर, पंजाब, दसवां संस्करण, 1998, पृ. सं. 201 पर उद्धृत (वाणी–143)